[1]

उपनिषदों में ब्रह्मविद्या

मानव जीवन का लक्ष्य शाश्वत सुख की प्राप्ति तथा दुःखों का नाश है। यह लक्ष्य अविद्या के नाश तथा ब्रह्म साक्षात्कार के बिना सम्भव नहीं है। शाश्वत सुख की उपलब्धि जीव को मोक्ष के द्वारा ही मिलती है। मोक्ष प्राप्त करने के लिये ही परमात्मा ने जीव को मानव शरीर प्रदान कर सब साधन उपलब्ध करवा दिये हैं। मोक्ष प्राप्ति के लिये ब्रह्मविद्या का ज्ञान परमावश्यक है।

उपनिषदों की गणना वेदान्त के अन्तर्गत होती है। वेदान्त दर्शन का आरम्भ **"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा"** से होता है। इस का अर्थ करते हुए स्वामी ब्रह्ममुनि जी लिखते है – जगत् में रोग वियोग भोग रूप दुःखों की अनुभूति के अनन्तर तथा जगत की नश्वरता का अनुमान हो जाने पर, निर्बाध स्थिर सुख और मृत्यु से परे अमृत की अनुभूति जिससे हो, इस हेतु ब्रह्म की जिज्ञासा – जानने की इच्छा होती है। महर्षि दयानन्द सरस्वती सत्यार्थ प्रकाश में वेदान्त दर्शन के अध्ययन से पूर्व ईशादि दस उपनिषदों के अध्ययन को अनिवार्य बताते हैं। इन्हीं उपनिषदों में ब्रह्मविद्या का वर्णन विस्तार से किया गया है। यह बात बहुत ध्यान देने की है कि आत्मविद्या के बिना ब्रह्मविद्या अधूरी है क्योंकि आत्मसाक्षात्कार के बिना ब्रह्मसाक्षात्कार नहीं हो सकता। हम यहाँ संक्षेप में उपनिषदों में प्रतिपादित ब्रह्मविद्या का दिग्दर्शन मात्र कराने का प्रयास करेंगे जिससे उपनिषदों की उस अमृत धारा में स्नान करने की रूचि पैदा हो सके।

ब्रह्म के बारे में उपनिषदें विस्तार से उल्लेख करती हैं कहीं स्पष्ट व्याख्यान से, कहीं प्रश्न-उत्तर के द्वारा, कहीं दृष्टान्त से। ईशोपनिषद् का आरम्भ ही ब्रह्म के उद्घोष से होता है :—

ईशा वास्यमिदꣳसर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्॥ १॥

जो कुछ इस ब्रह्माण्ड में गतिशील जगत है वह परमेश्वर द्वारा आच्छादित है। जो भी प्रत्यक्ष या अनुमान से जाना जाने वाला जगत है वह सब ब्रह्म में ही विद्यमान् है। अर्थात् ब्रह्म इस विशाल जगत से भी अधिक विस्तार वाला तथा सर्वत्र व्यापक है।

आगे परमात्मा के गुणों का वर्णन करते हुए इसी उपनिषद् के अन्त में —

" ओम् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतꣳ स्मर।" (ईशा० १५)

हे जीव ! तू उस ओम् पद वाची परमात्मा को स्मरण कर। अपने किये हुए कर्मों को याद कर। क्योंकि वही अन्तिम आश्रय है।

आगे केनोपनिषद् में परमात्मा को जगत की व्यवस्थाओं का नियन्ता बताया गया है। इस उपनिषद् का आरम्भ इस प्रश्न से है :—

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः। केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति॥केनो० १/१ ॥

अर्थात् मन किस की प्रेरणा से विषय की ओर टूटता है ? किसके द्वारा नियुक्त प्राण जन्मते ही पहले पहल गति करते लगता है ? किस की प्रेरणा से इस वाणी को हम बोलते हैं ? चक्षु और श्रोत्र को कौन देव अपने-अपने विषयों में नियुक्त करता है ? अर्थात् संसार के उत्पत्ति समय में सब चक्षु आदि इन्द्रियों को अपने अपने विषय के ग्रहण में कौन नियुक्त करता है ? नेत्र से रूप ही दीखता है शब्द क्यों नही सुना जाता यह नियम किसने किया है ? अपने इन्द्रियादि साधनों को प्राप्त हुआ जीवात्मा इन्द्रियों के साथ मन को संयुक्त करके कार्य करता है। यद्यपि व्यवहार दशा में मन आदि इन्द्रियों का साक्षात् प्रेरक जीवात्मा ही है तथापि उस उस इन्द्रिय से विषय का ग्रहण का नियम किसने किया ? अर्थात् चक्षु को रूप ग्रहण करने के लिये कौन प्रेरणा करता है ? क्योंकि नेत्रहीन यदि चाहना कर सकता है कि मुझको अन्य इन्द्रिय से भी रूप दीख जाये तो बहुत उत्तम है पर ऐसा होना सर्वथा असम्भव क्यों है ?

इसका उत्तर देते हुए ऋषि कहते हैं कि इन सब व्यवस्थाओं का नियन्ता परमेश्वर है। जीव तो मात्र परमेश्वर के द्वारा बनाये हुए नियमों के अनुसार ही इन्द्रियों से स्वतन्त्र होकर कार्य कर सकता है। वह ईश्वर ही इन्द्रियों के विषय का नियन्ता है परन्तु वह इन्द्रियों में बद्ध नहीं होता। इसलिये श्रोत्रादि इन्द्रियों के संग को जीवित दशा में ही छोड़कर असंग ईश्वर का ध्यान करने वाले योगी जन वासनादि अन्तःकरण के बन्धन से पृथक् होने के कारणा इस लोक से अलग हो कर = मर कर मरण धर्मरहित मुक्त हो जाते हैं। इसी को आगे स्पष्ट करते हुए कहा है कि ब्रह्म तक न आँख पहुँचती है, न वाणी जाती है, न मन जाता है, वह ब्रह्म इन्द्रियों से जाने हुए विषयों से भिन्न है। इस संसार के विषयों

से तो सर्वथा भिन्न है। (केनो० प्रथम खण्ड)

आगे चल कर उपनिषद् में एक आलंकारिक कथा द्वारा ब्रह्म को अग्नि, वायु आदि देवों की अपेक्षा सर्वोत्कृष्ट तथा एकमात्र उपासनीय बताया गया है। इस प्रकार ब्रह्म का उपदेश किया गया है।

कठोपनिषद् में नचिकेता यमाचार्य से वरदान के रूप में तीसरा प्रश्न पूछता है :—

" मनुष्य के मर जाने पर जो जिज्ञासा रहती है, कई लोग कहते हैं मरने पर शरीर में उपस्थित जीवात्मा नित्य रहता है और कई कहते हैं कि नहीं रहता, सो आप से शिक्षा पाकर मैं इसका समाधान चाहता हूँ। " (कठो० प्रथम वल्ली, मं० २०)

वेदों में कहा है कि इसी शरीर में जीव और ब्रह्म दोनों रहते हैं सो शरीर के नष्ट होने पर जीव रूपी आत्मा की सत्ता रहती है वा नहीं यह प्रश्न है। द्वितीय वल्ली में आत्मा की अमरता को बताते हुए श्रेय मार्ग पर चलने वाले जीव को श्रेष्ठ बताया है (२/१,२) " जीवात्मा, परमात्मा दोनों इस शरीर आदि जगत् में स्थिर हैं तो भी कार्य वस्तु के साथ न उत्पन्न होते और न उसके विनाश से नष्ट होते हैं। आत्मा का कोई उपादान कारण नहीं अर्थात् कोई उसका उत्पादक पिता नहीं है और न आत्मा किसी प्राणी वा वस्तु का पिता वा उपादान कारण होता है किन्तु कार्य कारण के धर्मों वा गुणों से पृथक् है। " (२/१८) तथा उस जीव को श्रेष्ठ कहा जो सांसारिक सुखों में आसक्त न होकर मोक्ष के मार्ग पर चलता है। अब यमाचार्य ब्रह्मविद्या का वर्णन करते हुए कहते हैं " सारे वेद ओम् वाचक शब्द रूप तथा प्राप्त होने योग्य वाच्य ब्रह्म का ही वर्णन करते हैं। सब तपोनुष्ठान भी ब्रह्म की प्राप्ति के लिये किये जाते है। इस ब्रह्म को पाने हेतु ही विद्वान् ब्रह्मचर्य आश्रम का अनुष्ठान करते हैं। वह ब्रह्म ओम् पद वाच्य है। " (२/१५) " यह ओम् एक अक्षर है, यही ब्रह्म है और यही ज्ञान है। जो इस प्रकार ओम् की साधना करता है वह समस्त लौकिक तथा पारलौकिक सुखों को प्राप्त कर लेता है। इसी ओम् का सर्वश्रेष्ठ सहारा है, यही एकमात्र अन्तिम सहारा है। इसी को जानकर जीव व्यापक ब्रह्म के बीच सब बाधाओं से छूटकर परम आनन्द को पाता है। " (२/१६)। आगे की वल्लियों में ब्रह्म विद्या का विशेष वर्णन है जो वहीं द्रष्टव्य हैं यहाँ विस्तार भय से सम्भव नहीं है।

आगे प्रश्नोंपनिषद् में विभिन्न प्रश्नों के द्वारा ब्रह्म का व्याख्यान है। परन्तु छठा प्रश्न

तो मुख्यतः ब्रह्म के बारे में है।

" सोलह कलाओं से पूर्ण पुरुष कौन है ? "

इसका उत्तर देते हुए महर्षि पिप्पलाद ने कहा कि आत्मा ब्रह्म निर्मित्त १६ कलाओं के आश्रय ही शरीर में वास करता है। जीवात्मा के सुखपूर्वक कार्य सिद्धि के लिये ही परमेश्वर ने प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, इन्द्रियाँ, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक, नाम रूपी सोलह कलाओं को रचा। इस सोलह कलाओं को वही परमात्मा धारण करता तथा प्रलय में नाश भी करता है। उस व्यापक परमात्मा के आश्रय से ही सब कलायें रहती हैं अतः उस जानने योग्य ब्रह्म को प्राप्त करना चाहिये। क्योंकि उस परमात्मा को जो जानता है उसे मृत्यु पीडित नहीं करती और वह संसार के बन्धन से छूट परम पिता परमात्मा के आश्रय से मोक्ष सुख को भोगता है।

मुण्डक उपनिषद् में शौनक नाम का जिज्ञासु महर्षि अंगिरा से पूछता है —

कस्मिन्नुभगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति॥(मुण्डक १.१.३)

अर्थात् हे भगवन् ! किस के जान लेने से यह सब जान लिया जाता है। अर्थात् वह कौन सी वस्तु है कि जिसके जान लेने पर फिर अन्य के जानने की अपेक्षा नहीं रहती॥

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि अंगिरा शौनक को परा और अपरा विद्या का उपदेश करते हैं। महर्षि उन साधनों का उपदेश करते हैं जिसके द्वारा अविद्या को त्याग जीव ब्रह्म को प्राप्त करता है। यह ब्रह्माण्ड ब्रह्म द्वारा ही निर्मित्त है इसका संचालन वही कर रहा है तथा वह प्रणव द्वारा जाना जाता है।

जिस ब्रह्म में यह जगत् उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय तीनों दशा में स्थित रहता है वह ऐसा बड़ा होने पर भी सर्वत्र व्याप्त होने से ज्ञानी लोगों को योगाभ्यास द्वारा अपने हृदय में प्रकाशमान आनन्दस्वरूप ब्रह्म प्राप्त होता है। अज्ञानी लोग हजारों जन्मों में भी उसको प्राप्त नहीं कर सकते। और ब्रह्मज्ञानी वा जीवन-मुक्त की अपेक्षा लौकिक विद्वान् भी अज्ञानी ही माने जाते हैं क्योंकि उनकी लोक में तीव्र बुद्धि भी ब्रह्म तक नहीं पहुँचती॥ २. २.१ ॥

जो सूर्यादि प्रकाशक पदार्थों का कारण होने से दीप्तिवाला, जो प्रकृति से भी

अतिसूक्ष्म तथा जिस में समस्त ब्रह्माण्ड तथा प्राणी स्थित हैं वह ब्रह्म अविनाशी तथा सब का जीवन हेतु तथा वही वेद रूपी वाणी और मनन शक्ति का निमित्त तथा सदा एकरस रूप से विद्यमान्, कभी न मरने वाला है वही जानने योग्य है वही लक्ष्य है॥ २.२.२ ॥

ब्रह्मविद्या रूपी महान अस्त्र-रूपी धनुष को धारण कर उपासना से तीक्ष्ण किये बुद्धिरूप बाण को संयुक्त कर उसी ब्रह्म के ध्यान में लगे हुए मन से प्रणव रूपी धनुष को तानकर ब्रह्म रूपी लक्ष्य को प्राप्त करें॥ २.२.३॥

प्रणव धनुष है, आत्मा शर है, ब्रह्म लक्ष्य है। जैसे बाण लक्ष्य में प्रवेश करता है वैसे ध्यान, समाधि आदि उपायों से सूक्ष्म हुई बुद्धि जिज्ञासु को ब्रह्म में प्रविष्ट करनी चाहिये॥ २.२.४ ॥

आगे ब्रह्मज्ञान से जीव की क्या दशा होती है इसका वर्णन है। इस प्रकार मुण्डक उपनिषद् में ब्रह्म विद्या को विशेष व्याख्यान है।

आगे माण्डुक्य उपनिषद् में तो केवल और केवल मात्र ओ३म् की ही व्याख्या है।

ओमित्येतदक्षरमिदꣳसर्वं तस्योपव्याख्यानम्। भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव॥१॥

ज्ञानी लोगों में प्रत्यक्ष पूर्ण निश्चल एकरस व्याप्त अर्थात् सर्वोपरि निश्चल अविनाशी व्याप्त जो कोई इष्ट वा उपास्य है वह ओ३म् पद वाच्य ब्रह्म ही है। ओ३म् इस वाच्य वाचक रूप ब्रह्म का, उसकी प्राप्ति का उपाय बताने वाला व्याख्यान है। भूत भविष्यत् और वर्त्तमान कालयुक्त भी सब प्रकार से ओ३म् शब्द का वाच्यार्थ परमेश्वर ही है। क्योंकि उस प्रकार एकरसता से कोई वस्तु तीनों कालों में संयुक्त नहीं होती कि जो भूत भविष्यत् वर्त्तमान काल में बनी रहे। किसी काल विशेष में होकर ठहरने अर्थात् सब काल में न रहने वाले प्राणियों से भिन्न, काल जिसका उल्लंघन नहीं करता और जो काल का भी काल है वह तीनों कालों से पृथक ऐसा भी एक वही ओम् पद वाच्य ईश्वर है।

आगे परमात्मा के चतुष्पाद की व्याख्या की गई है।

सर्वꣳ ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात्॥ २ ॥

ओम् पद का वाच्य सब ब्रह्म ही है अर्थात् उसमें अन्य का मेल कुछ नहीं है। यह

ध्यान से प्रत्यक्ष होने वाला व्याप्त ईश्वर सब से बड़ा है। सो यह परमेश्वर वाचक ओम् शब्द के मात्रारूप भेद को लेकर वाच्य आत्मा के भी चार प्रकार वा भाग हैं।

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष।

योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ॥ ६ ॥

यह ब्रह्म चराचर जगत का स्वामी, यह सर्व भूत भविष्यत् वर्त्तमान तीनों काल की वस्तु जाननेवाला, यह सब के अन्तःकरणों में प्राप्त होता, यह कारण तथा सब विद्यमान पदार्थों का उत्पत्ति और प्रलय का मुख्य आधार है॥

इसके बाद ९,१०,११ मन्त्रों में ओ३म् की एक-एक मात्रा की अवस्था को जानने वाले उपासक को क्या-क्या फल मिलता है इसके बारे में बताया गया है और अन्त में १२ मंत्र में चतुर्थ मात्रा से निर्गुण ब्रह्म का वर्णन किया है। मात्रा रहित ओंकार चतुर्थ है। मात्रा व पाद कल्पना द्वारा स्पष्ट भेद का व्याख्यान प्रपञ्च है उसकी समाप्ति जहाँ वाचक में हो तथा कार्यदशा को प्राप्त व्यक्त जगत् की शान्ति जहाँ हो, वह महाप्रलय दशा में अवस्थित वाच्य, आकारादि मात्रा वा पाद की कल्पना से रहित निर्विकल्प समाधि से ग्राह्य है। अतएव परमात्मा में शब्द आदि व्यवहार नहीं क्योंकि अतीन्द्रिय है चौथे प्रकार का वह ब्रह्म। उसके तुल्य वा उससे अधिक कोई नहीं तथा कल्याणस्वरूप है। ऐसे परमेश्वर की उपासना सर्वोपरि कल्याणकारिणी है। इस उक्त प्रकार से वाचक ओम् शब्द वाच्य के अन्तर्गत ही है। जो उक्त प्रकार से समाधि द्वारा शुद्ध हुई चित्त से निर्बीज समाधि में वाच्य वाचक की एकता को निश्चित साक्षात् जानता है वह उपासक पुरुष ग्रहण किये शरीर को छोड़ने के पश्चात् अपने स्वरूप से परमात्मा को प्राप्त होता है।

आगे तैत्तिरीय उपनिषद् में तीन वल्लियाँ हैं। शिक्षावल्ली, ब्रह्मानन्दवल्ली तथा भृगुवल्ली।

जो कोई पुरुष ब्रह्म नहीं है ऐसा जानता है वह मनुष्य अश्रेष्ठ अर्थात् न होने के तुल्य होता है और जो ब्रह्म है ऐसा जानता है वही विद्वान् वा श्रेष्ठ होता है। ब्रह्म से ही सारी सृष्टि की रचना हुई। परमात्मा ने तप कर के सब चराचर जगत् को बनाया और उस उत्पन्न हुए जगत् में व्याप्त हुआ। ब्रह्म सब चराचर नित्य वा अनित्य जगत् में एक रस कूटस्थ रहता है इस कारण सदा निर्विकार होने तथा सब स्थूल सूक्ष्म का आधार होने से

सत्य कहलाता है॥ ब्रह्मानन्द वल्ली, ६॥

ब्रह्म ही अव्यक्त अतिसूक्ष्म कारण से इस जगत् को बनाता है और स्वयं रचना से पृथक् आनन्दस्वरूप रहता है। इससे उसको विद्वान् लोग सर्वज्ञ वा सर्वशाक्तिमान कहते हैं। जो उसको जानने के लिये निरन्तर यत्न करता वही निर्भय निःशङ्क आनन्द को प्राप्त होता है यदि उसके ज्ञान के उपाय में भूल वा प्रमाद करता है तो परम आनन्द को न पाकर जगत् में बार-बार जन्म मरण में पड़ा रहता है॥ ब्रह्मानन्द वल्ली, ७॥

उस परमात्मा का आनन्द कैसा है इसका तुलनात्मक ज्ञान ब्रह्मानन्द वल्ली, ८ में दिया गया है :-

यदि कोई पुरुष अत्यन्त बलवान्, युवावस्था मे अच्छा आचरण करने वाला, सामान्य प्रकार वेदादिशास्त्रों को भी पढ़ा हुआ हो, उस पुरुष को सम्पूर्ण पृथिवी पर राज्य हो तथा वह सभी प्रकार से सुख सम्पन्न हो। उक्त सामग्री होने से जो राजा का आनन्द होता है वह एक गुणा मनुष्य सम्बन्धी आनन्द है अर्थात् साधारण लौकिक पुरुषों के लिये वह एक बड़ा आनन्द है। उन मनुष्यों के १०० आनन्द के बराबर मनुष्य गन्धर्वों का एक आनन्द होता है। मनुष्य गन्धर्व उसे कहते हैं जो वाणी की विद्या में कुशल अर्थात् गान विद्या में प्रवीण है तथा धर्म और ईश्वर विषय के यथार्थ स्वरूप का गान करने वाला है अथवा काम की आसक्ति से रहित वेदपाठी है। उन मनुष्य गन्धर्वों के १०० आनन्द के बराबर देव गन्धर्वों का एक आनन्द होता है। देव गन्धर्व उन्हें कहते हैं जिनकी वाणी से असत्यभाषणादि दोष छूट गये हैं तथा जिनकी सर्वोत्तम गान विद्या में निष्ठा है तथा जो कामासक्ति से रहित वेद के अध्येता हैं। उन देव गन्धर्वों के १०० आनन्द के बराबर पितरों का एक आनन्द होता है। पितर वे कहलाते हैं जो बहुत काल तक समाधि से होने वाले अनुभव करने योग्य आनन्द को प्राप्त होते हैं तथा मानसपुण्यकर्त्ता, मन के दोषों से रहित, मानस विचार में तत्पर विद्वान् हैं। उन पितरों के १०० आनन्द के बराबर आजानन देवों का एक आनन्द होता है। आजानन देव उन्हें कहते हैं जो जन्म से ही पूर्व जन्म सम्बन्धी बुद्धि की विचित्रता से लोक मे विशेष प्रसिद्धि और कीर्ति को प्राप्त होते हैं। वे पूर्व जन्मकृत शुभ कर्मों के अनुष्ठान से वर्त्तमान जन्म में उच्च पदवी को प्राप्त होते हैं। उन आजानन देवों के १०० आनन्द के बराबर कर्म देवों का एक आनन्द होता है। कर्म देव

उन्हें कहते हैं जो वर्त्तमान जन्म में किये हुए शुभ तथा शुद्ध कर्मों के आधार पर मनुष्यों में उत्तम देवाधिकार को प्राप्त होते हैं। उन कर्म देवों के १०० आनन्द के बराबर देवों का एक आनन्द होता है। देव उन्हें कहा जाता है जो माता पिता की परम्परा से ही जन्म से बुद्धि और विद्या सम्बन्धी सुखों में बढ़े हुए स्वयं सिद्ध विद्वान् हों। उन देवों के १०० आनन्द के बराबर इन्द्र का एक आनन्द होता है। इन्द्र उस राजर्षि को कहते हैं जो विद्वानों मे भी छात्रधर्म की प्रधानता रखने वाला तथा विद्वानों मे बुद्धि की प्रबलता से प्रधान सभापति राजा के तुल्य शासक है। इन्द्र के १०० आनन्द के बराबर बृहस्पति का एक आनन्द होता है। बृहस्पति उसे कहते हैं जो इन्द्रादि विद्वानों का भी गुरु हो वह सब विद्याओं के अगाध आशय तक पहुँचा हो तथा जिसके ऊपर अन्य कोई भी मनुष्य विद्वान् नहीं हो सकता। बृहस्पति के १०० आनन्द के बराबर प्रजापति का एक आनन्द होता है। प्रजापति उस सम्राट को कहते हैं जिसने सभी प्रकार की कामनाओं पर विजय पा ली हो तथा वेदों का विद्वान् हो। प्रजापति के १०० आनन्द के बराबर ब्रह्म का एक आनन्द होता है। और ब्रह्म का आनन्द मोक्ष के अधिकारी जीव को मिलता है। वस्तुतः ब्रह्म के आनन्द की कोई गणना या सीमा नहीं है यह तो मात्र सांसारिक सुखों की अपेक्षा ब्रह्म से प्राप्त होने वाले सुख की तुलना ही है। इस आनन्द को न्यूनाधिक दिखाने का प्रयोजन यह है कि ब्रह्म प्राप्ति रूप मुक्तिदशा में हम को कैसा वा कितना आनन्द होगा।

आगे ऐतरेय उपनिषद् में तीन अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में शरीरादि रूप में बने स्थूल जगत् की रचना का क्रम वर्णन, प्राकृत शरीर में जीव के घुसने का प्रकार और परमेश्वर का साक्षात्कार करना ही किसी के जागने का परिणाम कहा है। द्वितीय अध्याय में जीव के गर्भ में आने का प्रकार नवमें माह में गर्भस्थ जीव का अपनी दुरावस्थारूप नरक वास के स्मरण से तथा पूर्वजन्मों में भोगे बहुत दुःखों को स्मरण से शोक वा पश्चाताप करना, जन्म-मरण के प्रवाह से होने वाले कष्ट से निकलने की प्रतिज्ञा और सम्यक् जागे हुए किसी का मोक्ष का लाभ होने का वर्णन किया है। तृतीय अध्याय में जीव ब्रह्म दोनों के परिचयार्थ कर्म और स्वरूप भेद से वर्णन और उपासक जीवन से उपास्य ईश्वर के भिन्न ठीक-ठीक जान लेने पर मोक्ष प्राप्ति का वर्णन है। यह उपनिषद् छोटी होने पर भी तत्वज्ञान द्वारा मनुष्यों को जगाने वाली होने से बहुत महत्त्वपूर्ण है।

आगे छान्दोग्य उपनिषद् का आरम्भ ही ब्रह्म की उपासना से होता है।

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत, ओमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम्॥

॥छान्दो० १.१.१ ॥

अविनश्वर, जिसको सामगायक उच्चस्वर से गाते हैं और प्रत्यक्षवत् सर्वत्र भासमान इस सर्वव्यापक सर्वरक्षक ओम् पद वाच्य ब्रह्म की ही उपासना करें क्योंकि ब्रह्मवित् सर्वव्यापकत्वादि गुणयुक्त ब्रह्म को ही उच्च स्वर से गाते हैं। इस ओम् का गूढ़ व्याख्यान आगे किया गया है।

प्रथम प्रपाठक के तेरह खण्डों में ओम् की उपासना का वर्णन है। इस प्रसङ्ग में आगे कहा है :—

स एष रसानाᳯ रसतमः परमः। पराद्धर्थोऽष्टमो यदुद्गीथः॥

॥छा० १.१.३॥

जो उद्गीथ (ओङ्कार) पद वाच्य ब्रह्म है वह यह ईश्वर सम्पूर्ण रसों में अत्युत्तम रस अर्थात् आनन्द है। जिससे परे कोई न हो उस ब्रह्म का परम कहते है और वह ब्रह्मवित् का परम प्रापणीय स्थान है।

ब्रह्म की वाणी ही ऋग्वेद है, ब्रह्म के प्राण के समान सामवेद है, और वह सर्वव्यापक, सर्वरक्षक, अविनश्वर ब्रह्म ही उद्गीथ है। जो यह वाक् और प्राण, ऋक् और साम का जोड़ा है ये उसी अक्षर (ओम्) से सम्बन्ध रखते हैं॥ छान्दो० १.१.५ ॥

जो इस अविनश्वर उद्गीथ को सम्यक् प्रकार जानता हुआ उसकी उपासना करता है वह निश्चय ही आप्त-काम हो जाता है। अर्थात् उस ब्रह्मवित् के सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं॥ छान्दो० १.१.७ ॥

ओङ्कार से ही त्रयी विद्या का आरम्भ होता है। ओ३म् को ही होता सुनाते हैं, ओङ्कार की ही अध्वर्यु स्तुति करते हैं, ओङ्कार का ही उद्गाता गान करते हैं। ये सब क्रियायें इसी अविनश्वर ब्रह्म की उपासना के लिये होती हैं। इसी की महिमा से और इसी के आनन्द से मनुष्यों की प्रवृत्ति शुभ कर्मों में होती है॥ छान्दो० १.१.६ ॥

जो कोई ओ३म् को जानता है अथवा जो नहीं जानता है - वह दोनों ही ओङ्कार की साहयता से कर्म करते हैं। परन्तु विद्या और अविद्या भिन्न-भिन्न हैं। विद्या से श्रद्धा से

तथा उपनिषद् की शिक्षा से जिस किसी कर्म को करता है वही कर्म बहुत शुभ फल देने वाला होता है। यह सब कुछ उस अक्षर ओम् का ही व्याख्यान है॥ छान्दो० १.१.१०॥

आगे उपनिषद् में ओ३म् की विस्तृत व्याख्या की गई है।

अब बृहदारण्यक उपनिषद् में ब्रह्म वर्णन को दिखाते है।

ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् ॥ सबसे प्रथम ब्रह्म ही था। उसी ब्रह्म ने सृष्टि की रचना की।

इसी उपनिषद् के द्वितीय अध्याय के ब्राह्मण ४-५ में याज्ञवल्क्य मैत्रेयी संवाद आया है जिसमें ब्रह्म विद्या का उपदेश किया गया है। अपने काल में याज्ञवल्क्य एक महान् एवं प्रसिद्ध ब्रह्मवेत्ता थे।

याज्ञवल्क्य जब अपने आश्रम को छोड़कर जाने लगे, तो उन्होंने अपनी पत्नी मैत्रेयी से कहा - देखो मैं इसी गृहस्थाश्रम में पड़े नही रहना चाहता, मैं ऊपर उठना चाहता हूँ। आओं, तुम्हारा कात्यायनी के साथ धन का निपटारा कर दूँ।

मैत्रेयी ने कहा, भगवन् ! अगर यह सारी पृथिवी धन से पूर्ण होकर मेरी हो जाये, तो क्या मैं अमर हो जाऊगी।

याज्ञवल्क्य :- नहीं, उस अवस्था में, जैसे साधन सम्पन्न व्यक्ति चैन से जीवन निर्वाह करते हैं, वैसे तुम्हारा जीवन होगा। धन से अमरता पाने की आशा नहीं हो सकती।

मैत्रेयी :- जिससे मैं अमर न हो सकूँ, उसे लेकर मैं क्या करूँ ? भगवन् अमर होने का जो रहस्य आप जानते हैं, मुझे भी उसी का उपदेश कीजिये।

याज्ञवल्क्य :- तू तो मेरी प्रिय है, और बड़ा प्रिय वचन बोल रही है। आ बैठ मैं तुझे खोलकर समझाता हूँ। मेरी बातों पर तू चिन्तन कर।

- ब्रह्मवादिनी स्त्री को पति की कामना के लिये पति प्रिय नहीं होता किन्तु आत्मा की कामना के लिये पति प्रिय होता है।

- ब्रह्मवादी पुरुष को पत्नी की कामना के लिये पत्नी प्रिय नहीं होती किन्तु आत्मा की कामना के लिये पत्नी प्रिय होती है।

- ब्रह्मवादी माता-पिता को पुत्रों की कामना के लिये पुत्र प्रिय नहीं होते किन्तु आत्मा की कामना के लिये पुत्र प्रिय होते है।

- ब्रह्मवादी पुरुष को धन की कामना के लिये धन प्रिय नहीं होता किन्तु आत्मा की कामना के लिये धन प्रिय होता है।

- ब्रह्मवादी को ब्राह्मण की कामना के लिये ब्राह्मण प्रिय नहीं होता किन्तु आत्मा की कामना के लिये ब्राह्मण प्रिय होता है।

- ब्रह्मवादी को क्षत्रिय की कामना के लिये क्षत्रिय प्रिय नहीं होता किन्तु आत्मा की कामना के लिये क्षत्रिय प्रिय होता है।

- ब्रह्मवादी को लोकों की कामना के लिये लोक प्रिय नहीं होते किन्तु आत्मा की कामना के लिये लोक प्रिय होते है।

- ब्रह्मवादी को देवों की कामना के लिये देव प्रिय नहीं होते किन्तु आत्मा की कामना के लिये देव प्रिय होते है।

- ब्रह्मवादी को भूतों की कामना के लिये भूत प्रिय नहीं होते किन्तु आत्मा की कामना के लिये भूत प्रिय होते है।

- ब्रह्मवादी को सब की कामना के लिये सब प्रिय नहीं होते किन्तु आत्मा की कामना के लिये सब प्रिय होते है।

हे मैत्रेयी, निश्चय से आत्मा ही द्रष्टव्य, श्रोतव्य, मन्तव्य और निदिध्यासितव्य है। निश्चय से आत्मा के दर्शन से, श्रवण से, मनन से और विज्ञान से यह सब विदित होता है। (यहाँ आत्मा से तात्पर्य जीवात्मा और परमात्मा दोनों ही हैं) ।

आगे चल कर कहा है - जो लोग इस शरीर के रहते हुए किसी प्रकार से उस ब्रह्म को जानते हैं तो ठीक है यदि शरीर के रहते नहीं जान पाते तो हम लोग अज्ञानी ही रहेंगे तथा इससे महान विनाश होगा क्योंकि जो परमात्मा का जान लेते हैं वे मुक्त हो जाते हैं अन्यथा जन्म-मरण के अनवरत चक्र में ही पड़े रहते हैं। और भी -

जो उस अक्षर ब्रह्म को जाने बिना इस लोक सवे प्रयाण करता है वह कृपण है, कृपा का, दया का पात्र है। और जो उस अक्षर ब्रह्म को जानकर उस लोक से प्रयाण करता है वही ब्राह्मण - ब्रह्मवेत्ता है॥ बृहदारण्यक ३.८.१०॥

इसी उपनिषद् के तीसरे अध्याय में महर्षि याज्ञवल्क्य जनक की सभा में अपने अथाह ज्ञान से बहुत से विद्वानों के ब्रह्मविषयक भिन्न-भिन्न प्रश्नों के उत्तर देते हुए ब्रह्मविद्या का वर्णन करते हैं। यह वही पर द्रष्टव्य है। परन्तु हम यहाँ गौतम उद्दालक के प्रश्न " क्या तुम उस अन्तर्यामी को जानते हो जो इस लोक और परलोक और समस्त प्राणियों को स्वयं उनके बीच में स्थित होकर नियम में रखता है " के उत्तर में जो महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा उसको यहाँ दे रहें हैं -

जो पृथिवी में रहता हुआ भी पृथिवी से बाहर भी विद्यमान है जिसको पृथिवी नहीं जानती। जिसका शरीर पृथिवी है। जो अन्दर और बाहर स्थित होकर पृथिवी का शासन करता है। जो आत्मा का भी आत्मा है। जो अमृत है। यही वह अन्तर्यामी ब्रह्म है।

जो जल में रहता हुआ भी जल से बाहर भी विद्यमान है जिसको जल नहीं जानता। जिसका शरीर जल है। जो अन्दर और बाहर स्थित होकर जल का शासन करता है। जो आत्मा का भी आत्मा है। जो अमृत है। यही वह अन्तर्यामी ब्रह्म है।

जो अग्नि में रहता हुआ भी अग्नि से बाहर भी विद्यमान है जिसको अग्नि नहीं जानता। जिसका शरीर अग्नि है। जो अन्दर और बाहर स्थित होकर अग्नि का शासन करता है। जो आत्मा का भी आत्मा है। जो अमृत है। यही वह अन्तर्यामी ब्रह्म है।

जो अन्तरिक्ष में रहता हुआ भी अन्तरिक्ष से बाहर भी विद्यमान है जिसको अन्तरिक्ष नहीं जानता। जिसका शरीर अन्तरिक्ष है। जो अन्दर और बाहर स्थित होकर अन्तरिक्ष का शासन करता है। जो आत्मा का भी आत्मा है। जो अमृत है। यही वह अन्तर्यामी ब्रह्म है।

जो वायु में रहता हुआ भी वायु से बाहर भी विद्यमान है जिसको वायु नहीं जानता। जिसका शरीर वायु है। जो अन्दर और बाहर स्थित होकर वायु का शासन करता है। जो आत्मा का भी आत्मा है। जो अमृत है। यही वह अन्तर्यामी ब्रह्म है।

जो द्युलोक में रहता हुआ भी द्युलोक से बाहर भी विद्यमान है जिसको द्युलोक नहीं जानता। जिसका शरीर द्युलोक है। जो अन्दर और बाहर स्थित होकर द्युलोक का शासन करता है। जो आत्मा का भी आत्मा है। जो अमृत है। यही वह अन्तर्यामी ब्रह्म है।

जो आदित्य में रहता हुआ भी आदित्य से बाहर भी विद्यमान है जिसको आदित्य

नहीं जानता। जिसका शरीर आदित्य है। जो अन्दर और बाहर स्थित होकर आदित्य का शासन करता है। जो आत्मा का भी आत्मा है। जो अमृत है। यही वह अन्तर्यामी ब्रह्म है।

जो दिशाओं में रहता हुआ भी दिशाओं से बाहर भी विद्यमान है जिसको दिशायें नहीं जानती। जिसका शरीर दिशायें हैं। जो अन्दर और बाहर स्थित होकर दिशाओं का शासन करता है। जो आत्मा का भी आत्मा है। जो अमृत है। यही वह अन्तर्यामी ब्रह्म है।

जो चन्द्र और ताराओं में रहता हुआ भी चन्द्र और ताराओं से बाहर भी विद्यमान है जिसको चन्द्र और ताराएं नहीं जानते। जिसका शरीर चन्द्र और ताराएं है। जो अन्दर और बाहर स्थित होकर चन्द्र और ताराओं का शासन करता है। जो आत्मा का भी आत्मा है। जो अमृत है। यही वह अन्तर्यामी ब्रह्म है।

जो आकाश में रहता हुआ भी आकाश से बाहर भी विद्यमान है जिसको आकाश नहीं जानता। जिसका शरीर आकाश है। जो अन्दर और बाहर स्थित होकर आकाश का शासन करता है। जो आत्मा का भी आत्मा है। जो अमृत है। यही वह अन्तर्यामी ब्रह्म है।

जो तम में रहता हुआ भी तम से बाहर भी विद्यमान है जिसको तम नहीं जानता। जिसका शरीर तम है। जो अन्दर और बाहर स्थित होकर तम का शासन करता है। जो आत्मा का भी आत्मा है। जो अमृत है। यही वह अन्तर्यामी ब्रह्म है।

जो तेज में रहता हुआ भी तेज से बाहर भी विद्यमान है जिसको तेज नहीं जानता। जिसका शरीर तेज है। जो अन्दर और बाहर स्थित होकर तेज का शासन करता है। जो आत्मा का भी आत्मा है। जो अमृत है। यही वह अन्तर्यामी ब्रह्म है।

जो सम्पूर्ण भूतों में रहता हुआ भी सब भूतों से बाहर भी विद्यमान है जिसको सब भूत नहीं जानते। जिसका शरीर सब भूत हैं। जो अन्दर और बाहर स्थित होकर सब भूतों का शासन करता है। जो आत्मा का भी आत्मा है। जो अमृत है। यही वह अन्तर्यामी ब्रह्म है।

जो प्राण में रहता हुआ भी प्राण से बाहर भी विद्यमान है जिसको प्राण नहीं जानता। जिसका शरीर प्राण है। जो अन्दर और बाहर स्थित होकर प्राण का शासन करता है। जो आत्मा का भी आत्मा है। जो अमृत है। यही वह अन्तर्यामी ब्रह्म है।

जो वाणी में रहता हुआ भी वाणी से बाहर भी विद्यमान है जिसको वाणी नहीं

जानता। जिसका शरीर वाणी है। जो अन्दर और बाहर स्थित होकर वाणी का शासन करता है। जो आत्मा का भी आत्मा है। जो अमृत है। यही वह अन्तर्यामी ब्रह्म है।

जो चक्षु में रहता हुआ भी चक्षु से बाहर भी विद्यमान है जिसको चक्षु नहीं जानता। जिसका शरीर चक्षु है। जो अन्दर और बाहर स्थित होकर चक्षु का शासन करता है। जो आत्मा का भी आत्मा है। जो अमृत है। यही वह अन्तर्यामी ब्रह्म है।

जो श्रोत्र में रहता हुआ भी श्रोत्र से बाहर भी विद्यमान है जिसको श्रोत्र नहीं जानता। जिसका शरीर श्रोत्र है। जो अन्दर और बाहर स्थित होकर श्रोत्र का शासन करता है। जो आत्मा का भी आत्मा है। जो अमृत है। यही वह अन्तर्यामी ब्रह्म है।

जो मन में रहता हुआ भी मन से बाहर भी विद्यमान है जिसको मन नहीं जानता। जिसका शरीर मन है। जो अन्दर और बाहर स्थित होकर मन का शासन करता है। जो आत्मा का भी आत्मा है। जो अमृत है। यही वह अन्तर्यामी ब्रह्म है।

जो त्वचा में रहता हुआ भी त्वचा से बाहर भी विद्यमान है जिसको त्वचा नहीं जानती। जिसका शरीर त्वचा है। जो अन्दर और बाहर स्थित होकर त्वचा का शासन करता है। जो आत्मा का भी आत्मा है। जो अमृत है। यही वह अन्तर्यामी ब्रह्म है।

जो विज्ञान में रहता हुआ भी विज्ञान से बाहर भी विद्यमान है जिसको विज्ञान नहीं जानता। जिसका शरीर विज्ञान है। जो अन्दर और बाहर स्थित होकर विज्ञान का शासन करता है। जो आत्मा का भी आत्मा है। जो अमृत है। यही वह अन्तर्यामी ब्रह्म है।

जो रेत में रहता हुआ भी रेत से बाहर भी विद्यमान है जिसको रेत नहीं जानता। जिसका शरीर रेत है। जो अन्दर और बाहर स्थित होकर रेत का शासन करता है। जो आत्मा का भी आत्मा है। जो अमृत है। यही वह अन्तर्यामी ब्रह्म है। हे गौतम ! पुनः वह कैसा है ? किसी ने न जिसको देखा, न देखेंगे न देखते हैं अर्थात् चक्षुरिन्द्रिय का विषय नहीं है परन्तु स्वयं जो सब को देखने हारा है, जो सुना नहीं जाता परन्तु सब की बात सुनता है। जो मनन नहीं किया जाता परन्तु सब का मनन करता है। जो जाना नहीं जाता परन्तु सब को अच्छी प्रकार जानता है। क्यों कि वह भौतिक चक्षु, श्रोत्र, मन और बुद्धि से नहीं जाना जा सकता। फिर वह कैसा है ? इस अन्तर्यामी से अन्य कोई द्रष्टा नहीं, अन्य कोई श्रोता नहीं, अन्य कोई मन्ता नहीं, अन्य कोई विज्ञाता नहीं। जो स्वयं अदृष्ट, अश्रुत,

अमत, अविज्ञात है, वही अन्तर्यामी है। पुनः वह कैसा है ? अमृत वाला है, वही तेरा मेरा सब का आत्मा है। वह आत्मा के द्वारा ही जाना जा सकता है, वही यह अन्तर्यामी है। इस विज्ञान से अन्य जो विज्ञान है वह दुःखदायी है। यही यथार्थ ज्ञान है।

इस प्रकार उपनिषदों में ब्रह्म विद्या का विस्तार से वर्णन है।

ओम् शम्॥

सतीश आर्य